SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों की वर्तमान स्थिति

बृजलाली पटेल, (Ph. D.), हिंदी विभाग,
उमेश प्रसाद, शोधार्थी, हिंदी विभाग, एम. फिल. द्वितीय सेमेस्टर
शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Authors
बृजलाली पटेल, (Ph. D.), हिंदी विभाग,
उमेश प्रसाद, शोधार्थी,
हिंदी विभाग, एम. फिल. द्वितीय सेमेस्टर
शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,
रीवा, मध्यप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 10/08/2021
Revised on : -----
Accepted on : 17/08/2021
Plagiarism : 02% on 11/08/2021

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 2%

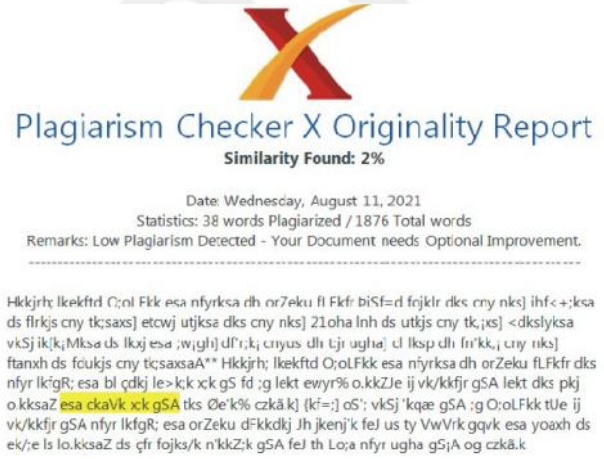

Date: Wednesday, August 11, 2021
Statistics: 38 words Plagiarized / 1876 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

Hkkjrh; lkekftd O;ol Fkk esa nfyrksa dh orZeku fLFkfr bisf=d fojklr dks cny nks] ihf<+;ksa ds flrkjs cny tk;saxs] etcwj utjksa dks cny nks] 21oha lnh ds utkjs cny tk,¡xs] <dkslyksa vkSj ik[k;Mksa ds lkxj esa ;w¡gh] dI'r;k¡ cnyus dh tjr ugha] cl lksp dh fn'kk,¡ cny nks] ftanxh ds fcukjs cny tk;saxsaA** Hkkjrh; lkekftd O;oLFkk esa nfyrksa dh orZeku fLFkfr dks nfyr lkfgR; esa bl çdkj le>k;k x;k gS fd ;g lekt ewyr% o.kkZJe ij vk/kkfjr gSA lekt dks pkj o.kksaZ esa ckaVk x;k gSA tks Øe'k% czkã.k] {kf=;] oS'; vkSj 'kqæ gSA ;g O;oLFkk tUe ij vk/kkfjr gSA nfyr lkfgR; esa orZeku dFkkdkj Jh jkenj'k feJ us ty VwVrk gqvk esa yoaxh ds ek/;e ls lo.kksaZ ds çfr fojks/k n'kkZ;k gSA feJ th Lo;a nfyr ugha gS;A og czkã.k

शोध सार

.भारतीय सामाजिक व्यवस्था में हिंदू, इसाई, मुसलमान, सिक्ख, बौद्ध आदि सभी सामाजिक व्यवस्था में दलित वर्ग उपस्थित है। वर्तमान समय में जिनको दलित समझा जाता है, उनमें से अनेक वर्गों को पहले अछूत या अस्पृश्य माना जाता था उनका अनेक प्रकार से शोषण हुआ। भारत की जनसंख्या 2011 के अनुसार भारत की जनसंख्या 16.6% या 20.14 करोड़ आबादी दलितों की है तथा हम यहाँ सामाजिक व्यवस्था और भेदभाव वाली तीन सामाजिक असमानताओं पर विचार करेगें कि लिंग, धर्म और जाति पर आधारित सामाजिक विषमताएँ स्थित है। ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र के ही नहीं संपूर्ण देश के समाज सुधारकों में सबसे अधिक प्रतिभा सम्पन्न और विद्रोही व्यक्ति थें। उन्होंने वर्ण व्यवस्था की नई व्याख्या देते हुए पौराणिक व वैदिक व्यवस्था का विरोध किया और वे सामाजिक व्यवस्था के समर्थक थे।

मुख्य शब्द

सामाजिक व्यवस्था, परमात्मा, पुर्नजन्मवाद, भाग्यवाद, अंधविश्वास, कर्मफल.

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों की वर्तमान स्थिति को दलित साहित्य में इस प्रकार समझाया गया है कि यह समाज मूलतः वर्णाश्रम पर आधारित है। समाज को चार वर्णों में बांटा गया है जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र है। यह व्यवस्था जन्म पर आधारित है। दलित साहित्य में वर्तमान कथाकार श्री रामदरश मिश्र ने जल टूटता हुआ में लवंगी के माध्यम से सवर्णों के प्रति विरोध दर्शाया है। मिश्र जी स्वयं दलित नहीं हैं। वह ब्राह्मण हैं, उनका विरोध शाब्दिक या नैतिक ही हो सकता है, सामाजिक नहीं।

वे दलित पात्र से कहलवाते हैं कि–"क्या हुआ

अगर मेरे भाई ने एक सवर्ण की लड़की से भला– बुरा किया? वह अपने नेता जग्गू से अनुसूचित जाति के साथ–सभी लोगों से सवाल करती है कि–"जब दलितों की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई दलित बामन की लड़की को छू दे तो परलय आ जाती है।"[1]

लेकिन जहाँ तक मेरा मानना है कि मिश्र जी ने बड़े चतुराई के साथ बता रहे हैं कि दलितों की लड़कियों के साथ अत्याचार तो सब कर सकते हैं। उनको इस्तेमाल की वस्तु बना रखा है। उनके पीड़ा, दुख, दर्द को कोई देखने वाला नहीं है ना ही विरोध करने वाला है, अगर विरोध भी करता है तो भी कुछ नहीं कर सकता है। यदि कोई दलित सवर्ण की लड़की को छू दे तो उस दलित समाज को परलय आ जाती है और उस दलित समाज को दंडित किया जाता है या मार दिया जाता है।

"शूद्रो गुप्तमगुप्तंवा द्वैजातं वर्णमावसन
अगुप्तम अंग सर्वस्वैगुप्तं सर्वेण हीयते।।"[2]

अर्थात् रक्षिता या आरक्षिता द्विज जाति वर्ण की स्त्री के साथ यदि दलित (शूद्र) गमन करे तो आरक्षित में छेदना (लिंग काट देना) तथा सर्वस्व हरण करें और रक्षिता के संबंध में सब (शरीर तथा धन आदि) से हीन कर दे। आगे 8/377 वे श्लोक में इस दंड का और अधिक स्पष्ट किया गया है कि दलित को चटाई में लपेटकर जला दिया जाए। जबकि दुनिया का कोई न्याय शास्त्र ऐसा नहीं कहता जो एक ही अपराध के लिए दो व्यक्तियों को अलग–अलग दंड दे। न्याय विधान में तो किसी अपराध कर्म की सजा अपराध प्रकृति तथा अपराधी की मंशा के अनुसार होती है। जाति वर्ण के अनुसार कहीं भी दंड दिए जाने का विधान नहीं बनाया गया है।

लेकिन इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों की स्थिति संसार के कुत्ता, बिल्ली, कीड़े–मकोड़ों, पशुओं से भी बदतर जीवन व्यतीत करने वाला है। दलित समाज में जो वर्तमान समय में दलित समाज के डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के द्वारा लिखा गया संविधान लागू होता है। पशुवत जिंदगी बिताने वाला दलित समाज आज यानी वर्तमान में मनुष्य की जिंदगी जी रहा है, वह पढ़ लिख रहा है, शिक्षित हो रहा है, दलित समाज में मनु द्वारा मनुस्मृति में दलितों के लिए दंड विधान बनाया गया था। वर्तमान समय में उसका खुलकर विरोध होता है, आंदोलन होता है क्योंकि आज का दलित सामाजिक व्यवस्था में कम विश्वास करते हैं, कर्म में ज्यादा।

इस पर विचार करते हुए डॉ. विमल कीर्ति लिखते हैं "कि "जो महात्मा गांधी और विवेकानंद से, जातिवाद से मुक्त नहीं हुए, जो शास्त्रों की गुलामी से मुक्त नहीं हुए, वह दलितों की, पिछड़ों की मुक्ति के आदर्श पुरुष कैसे हो सकते हैं।"[3] लेकिन इनके संदर्भ में डॉक्टर अंबेडकर ने आत्मा, परमात्मा, अवतारवाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद जैसी सभी परिकल्पनाओं का विरोध किया और बताया कि ये सभी वर्ण व्यवस्था और जातिवाद पर आधारित शोषण तंत्र के अंग हैं।

जब तक ये परतंत्रता से मुक्त नहीं होंगे तब तक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है और 14 अक्टूबर 1956 में डॉ बाबासाहेब आंबेडकर ने हिंदूधर्म त्याग कर बौद्ध धर्म अपना लिए जो दलित साहित्य की धार्मिक, सांस्कृतिक, मान्यताओं पर आधार है। "दलित साहित्य के उद्‌भव में जो कर्मदृफल तथा भाग्य और भगवान को लेकर दलित समाज अंधविश्वासों से घिरा हुआ है। दलित लोग भगवान, भाग्य और जाति विभाजन एवं सामंती मानसिकता के समाज आज भी शिकार हैं। वे सामाजिक व्यवस्था से मुक्त नहीं हुए हैं।"[4]

लेकिन जहाँ तक मेरा मानना है कि दलित समाज जितना महत्व कर्म, भाग्य, भगवान पर पूरा जीवन व्यतीत कर देता है, वह सोचता है कि परंपरा है। यह मानसिकता अंधविश्वासों के कारण ही दलित परिवार या समाज के बच्चों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि वह आज भी पाखंडवाद, अंधविश्वास को परंपरा समझ कर ढ़ो रहा है। वह नहीं जानता कि मेरे आने वाली पीढ़ी के प्रति क्या गुजरेगी। खास तौर पर देखा जाए तो अन्धविश्वास अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग मानते हैं। वह सदियों से पाखंडवाद को ढोता चला आ रहा है और आज

भी ढो रहा है। दलित समाज के लोग वर्तमान में भी अपने बच्चों को पढ़ने, लिखने, शिक्षित होने के बजाय उनको तंत्र–मंत्र, झाड़–फूंक, पंडा बनाने में लगे हैं। इस वैज्ञानिक युग में किसी बीमार व्यक्ति झाड़–फूंक, तंत्र–मंत्र, देवी शक्ति से क्या ठीक हो सकता है? अगर किसी बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को गोली खिलाने के बजाय उसके हाथ–पाँव बाँध दिया जाए, तो क्या वह स्वस्थ हो सकता है?

दलित साहित्य में सामाजिक व्यवस्था को मानने वाला एक भारतीय समाज सामाजिक स्थिति को नहीं बदल सकता है और वह अपनी जन्मगत जाति नहीं बदल सकता है। यह एक विलक्षण देन है कि सबसे ज्यादा परिश्रमी, रचनात्मक, साहसी लोगों को शूद्र, दलित, अछूत, अत्मज बनाकर मानवीय अधिकारों से वंचित ही नहीं बल्कि मनुष्य होने की गरिमा को भी खंडित कर दिया है।"[5]

लेकिन भारतीय ठेकेदारों ने ठेका लेकर बैठे हुए सामाजिक व्यवस्था के नाम से अपना धंधा, व्यापार चला रहे हैं और दलितों को अंधविश्वास पाखंडवादी में गुमराह करके उनके जीवन, परंपरा, भाग्य, कर्म, फल का आस्था दिया गया है। सदियों से जिन पत्थरों ने कभी बोला नहीं, देखा नहीं, सुना नहीं, खाया नहीं, पिया नहीं और कुछ मांगा नहीं है फिर भी लोग बिना सोचे समझे भी दूध, अगरबत्ती, छप्पन, सोने–चांदी के श्रंगार एवं वेशभूषा आदि चीजों को चढ़ा कर खुश हो रहे हैं। आज भी दलित समाज में अनुसूचित जनजातियों के यहाँ जवाँ बोकर नौ दिन तक अंधविश्वास में टिका हुआ है। वह दलित के प्रति यह चेतना आ जाए कि नौ दिन का व्रत रखना एक दलित परिवार के लिए कितना कठिन है। यदि वे यह समझ जाए कि जो घी आग में डालकर जला दिए परंतु जलाने के बजाय अपने बच्चों को खिलाएँ जो आज कुपोषण का शिकार बन रहे हैं। जो रुपए उसमें खर्च करते हैं वह अपने बच्चों के पढ़ने–लिखने में खर्च किया जाए तो समाज में कितना बदलाव हो सकता है। इससे बड़ी मूर्खता का उदाहरण नहीं है जबकि इन सब की वास्तविक जरूरत जिंदा इंसान को है, लेकिन उसे किसी ने समझा नहीं।

रमणिका गुप्ता दलित साहित्य को सौंदर्यशास्त्र में विद्यमान मूलतः तत्वों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहती हैं कि– "दलित साहित्य में दलित साहित्यकारों ने नए बिम्ब गढ़े। पौराणिक मिथकों की परिभाषा बदल डाली। झूठ और आस्था पर चोट की तरह चमत्कार को तोड़ा। अनुभवों के प्रमाणिकता से दलित साहित्य में नया तेवर उभरा जो सीधे मन को छूता है वह विश्वसनीय है। यह वर्तमान साहित्यिक के लिजलिजेपन और बासीपन तथा एकरूपी रसवादी प्रणाली से भिन्न है और चमत्कारी कल्पनाओं से बिल्कुल अलग होता है। इसके दायरे में अंधविश्वास, भाग्य, पुनर्जन्म के कर्म या भगवान नहीं आते है। यह प्रत्यक्ष यथार्थ से मुक्त है, जीवंत है। जुल्मों से जूझकर मरते हुए और जीते हुए के बीच इर्द–गिर्द के स्त्री–पुरुष को सामने लाता है।"[6]

लेकिन पारंपरिक मान्यताओं से दलित साहित्य ने अपना रास्ता चुना है। दलित साहित्यकार पौराणिक आदर्श पात्र उसे नायक नहीं लगते। नायक को खलनायक में परिवर्तित करके दलित लेखक के जीवन मूल्यों में छिपी विसंगतियों पर प्रहार करता है जो दलित मनुष्य का शोषण कर उसे दासता की ओर ले जाती है। राम ने अपनी जिंदगी में सिर्फ एक महिला (सीता) को रावण से आजाद करवाया और फिर अग्नि परीक्षा के नाम पर आग में झोंक दिया। जबकि बाबा साहब अंबेडकर ने भी बिना किसी वानर सेना के संपूर्ण भारत की महिलाओं को आजादी दिलवाई। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में चाहे वह किसी भी वर्ण, जाति की महिला क्यों न हो। सभी को एक समान सम्मान के साथ जीने का अधिकार, पढ़ने–लिखने का अधिकार आंदोलन किसी सरस्वती देवी ने नहीं चलाया। सरस्वती देवी ने किसी स्कूल, कॉलेज में नहीं पढ़ी फिर क्यों विद्या ज्ञान की देवी कही जाती है? सावित्रीबाई फुले क्यों नहीं? जो सभी महिलाओं सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध, पहली शिक्षिका समाज सुधारिका थी जो आज 21वीं सदी में सभी जगह नारी को पढ़ने का अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण, जाति का हो उसे सम्मान के साथ शिक्षा प्राप्त होती है। दलितों को अच्छे भोजन का आंदोलन किसी अन्नपूर्णा देवी ने नहीं चलाया तो फिर इस भारतीय सामाजिक व्यवस्था के 33 करोड़ देवी देवताओं का पूजा–पाठ, नमन करने का क्या मतलब है?

निष्कर्ष

दलित साहित्य में दलितों की स्थिति से हमारा यह आशय है कि दलित साहित्य देवी–देवता, आत्मा, कर्मकांड

चमत्कार आदि से विरोध करता है। दलित साहित्य एक तरफ वर्ण और वर्णवाद का विरोध करता है और समानता, समरूपता तथा स्वतंत्रता को स्वीकार भी करता है। साहित्य इस प्रकार प्रमाणित रुप से गवाही जाने–अनजाने में मनुष्य को देता है। मैं साहित्य को सब कुछ मानता हूँ। दलित साहित्य के माध्यम से मुझे यही समझ में आता है कि साहित्य ही मेरा समाज है जो प्रत्येक मनुष्य को जोड़ने का काम साहित्य ने किया है। रुढ़िवादी व्यक्ति तो समाज को टुकड़ों में बाँटकर रखा है। वह आज भी उसी परंपरा, विश्वास पर यह समाज टिका हुआ है। साहित्य केवल यह एक मुक्त मानव है जो संसार में समता, एकता और सामंजस का निर्माण सिर्फ साहित्य पर हो सकता है। जहाँ तक मेरा मानना है कि भारतीय समाज महत्व कर्म, भाग्य, भगवान पर पूरा जीवन व्यतीत कर देता है। वह सोचता है कि परंपरा है यह मानसिकता अंधविश्वासों के कारण दलित परिवारों के बच्चों पर इतना प्रभाव पड़ा है कि वह आज भी अंधविश्वास को परंपरा समझ कर ढ़ो रहा है। जब तक ये सामाजिक व्यवस्था की परतंत्रता से मुक्त नहीं होंगे तब तक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। आज भी हम इस व्यवस्था से मुक्त नहीं हुए हैं और सामाजिक व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था को सुधारने के लिए प्रत्येक व्यक्ति व साहित्यकार अपना विचार व्यक्त करते रहें तभी परिवर्तन संभव हैं।

संदर्भ सूची

1. बेचौन, श्यौराज सिंह, *''दलित विमर्श''*, अनामिका पब्लिशर्स इंडस्ट्री ब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ 43।
2. सिंह, एन. सिंह, *''दलित साहित्यः परंपरा और विन्यास''*, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, पृष्ठ 59।
3. सिंह, एन. सिंह, *''दलित साहित्यः परंपरा और विन्यास''*, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, पृष्ठ 78।
4. लिंबाले, शरण कुमार, *''दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र''*, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 24।
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, *''मुख्यधारा और दलित साहित्य''*, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 47।
6. अम्बेडकर, बी आर, *''शूद्रो की खोज''*, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ 21,38,65,124।
7. अम्बेडकर, बी आर, *''शूद्र कौन और कैसे''*, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ 32–145।

****